International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 5.414 Volume 6, Issue 4, April 2019
Website- www.aarf.asia, Email : editoraarf@gmail.com, editor@aarf.asia

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों में जीवन दर्शन

1. डॉ. बुद्धमति यादव, व्याख्याता (हिन्दी), गौरी देवी महिला महाविद्यालय, अलवर
2. हेमलता कुमारी मीणा, शोधार्थी (हिन्दी), राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांशः

साहित्य की अन्य विद्याओं की तुलना में उपन्यास विधा के नवीन होने के बावजूद उसके सर्वाधिक लोकप्रिय एवं चर्चित होने का सबसे बड़ा कारण यह है कि वह मानव जीवन के सबसे करीब है। 'आधुनिक मनुष्य की नब्ज जितनी उपन्यास ने पहचानी है, शायद अन्य किसी विधा ने नहीं। उसकी आशा–आकांशा, आस्था–अनास्था, सुख–दुःख, दुःख–दर्द, आशा–अरमान, कुंठा, यंत्रणा, वेदना, पीड़ा सब कुछ तो इसमें रूपायित हो रहा है। (6)

हम अपने माहौल से तो परिचत परन्तु उपन्यास के द्वारा हम समाज, देश और विश्व के माहौल को आत्मसात करते है। उपन्यास जीवन की उपासना है । इसमें हम जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं। एक सफल उपन्यास को जीवन का भाष्य भी कहा जा सकता है। उपन्यास दौड़ते हुए जीवन को पकड़ता है। वह सिनेमेटोग्राफ की भाँति हमारे सामने आता है। वह गत जीवन को देखने वाली आंख बन जाता है। (7) इस प्रकार उपन्यास साहित्य न केवल एक व्यक्ति के बल्कि अपने साथ एक समाज तथा समस्त युग के चित्र को भी प्रस्तुत कर देता है। इसीलिए तो वर्तमान समय में जितनी तेजी से उपन्यास ने विकास किया है, उतना शायद अन्य किसी विधा ने नहीं किया होगा। जितने नये नये प्रयोग उपन्यास विधा में हुए है, उतने अन्य किसी विधा में नहीं हुए, और इन्हीं सब कारणों की वजह से उपन्यास साहित्य मानव जीवन का महत्वपूर्ण अंग बन चुका है।

हिन्दी के ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनैतिक उपन्यासकारों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपनी औपन्यासिक कला के माध्यम से उपन्यास के क्षेत्र में नये युग की शुरूआत की। उनके उपन्यास अपने कत्य, विषयवस्तु और शिल्प की दृष्टि से उत्कृष्ट कहे जा सकते है। संस्कृतनिष्ठ तथा आलंकारिक भाष– शैली में उनके उपन्यास कालक्रम तथा उद्देश्य की दृष्टि से विशिष्ट कहे जा सकते है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों में जीवन दर्शन :

1. जीवनदर्शन से अभिप्राय :

किसी भी लेखक का अपने तत्कालीन समाज के प्रति जो दृष्किोण होता है उसे ही उसका जीवन दर्शन कहते हैं। यदि जीवन शब्द पर विचार किया जाये तो इसका अर्थ है जो मृत न हो अर्थात जो जीवित या चेतन है वही जीवन है। प्रत्येक वस्तु के प्रति व्यक्ति का अपना एक निजी दृष्टिकोण होता है, इसी दृष्टिकोण को ही प्रकारान्तर से जीवन–दर्शन कहते हैं।

उपन्यास को मानव–जीवन का सर्वांगीण चित्र कहा जाता है। साहित्यकारों की विचारधारा या जीवन–दर्शन उनके उपन्यासों में होता ही है। बिना इसके काई उपन्यास साहित्यिक नहीं माना जाता है। जीवन दर्शन को उपन्यास के उद्देश्य के रूप में माना जाता है। उपन्यासकार जीवन को एक विशेष दृष्टि से देखता है, जीवन के प्रति एक विशिष्ट जीवन–दर्शन को वस्तु और चरित्र के द्वारा

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

प्रस्तुत करता है। हर उपन्यास जीवन का सूक्ष्म रूप है और उसका सृजन लेखक करता है। [1] अपने सृजन से जीवन के जिस सत्य को अभिव्यक्त करता है उसे ''काव्यात्मक सत्य कहते है।'' [2] उपन्यास में उद्देश्य का वही स्थान है जो जीव में आत्मा का स्थान है। वस्तुविधान उपन्यास का शरीर–तत्व, चरित्र–विधान, प्राणतत्व, और उद्देश्य उपन्यास का आत्म–तत्व है। डॉ. सुरश सिन्हा के कथनानुसार वर्ग वैषम्य, साधारण मानव–जीन की कुंठाएं एवं अतृप्त वासनाएं तथा कामनाएं, आर्थिक विषमताएं मध्यवर्ग का शोषण, पूंजीवाद की असमानताएं आदि सामाजिक समस्याओं से जो निष्कर्ष उपन्यासकार निकालता है और विचार या उद्देश्य निर्मित करता है वही उपन्यास का जीवन–दर्शन होता है। [3]

2. जीवन दर्शन के विधायक तत्व :

इसके अन्तर्गत जीवन की वे तमाम प्रमुख घटनाएँ और उतार–चढ़ाव आते हैं, जो उन्हें जीवन के नारी, पुरूष, सुख–दुःख, धर्म–राजनीति, विवाह, प्रेम, संस्कृति, परम्परा व प्रगति, ईश्वर व नियति आदि के सम्बन्ध में चिन्तन करने के लिए विवश करते है और समाज से ऊपर उठकर उनके विषय में निर्णय देने की प्रेरणा करते है। व्यक्ति का जीवन–दर्शन उसके स्वभाव चरित्र, वातावरण, पूर्व–परम्परागत संस्कारों, वंश, जाति, शिक्षा वर्ग और समाजगत संस्कारों के साथ ही सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, आंचलिक, युग–कालीन, देशीय, जातीय, एवं व्यक्तिगत परिस्थितियों से प्रभावित होकर निर्मित होता है। [4]

3. जीवन–दर्शन अभिव्यक्ति :

उपन्यासों के जीवन–दर्शन की अभिव्यक्ति प्रायः दो प्रकारों से की जाती है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से। प्रत्यक्ष विधि में उपन्यासकार अपने दृष्टिकोण से जीवन सम्बन्धी विचार स्वयं करता है, तो कभी पात्रों के कथोपकथन अथवा चिन्तन–मनन द्वारा जीवन सम्बन्धी विचारों को व्यक्त करता है। ये दोनों प्रकार प्रत्यक्ष विधि में आते है। दूसरा प्रकार अप्रत्यक्ष विधि इसमें उपन्यासों के अन्तर्गत चित्रित पात्रों के जीवन की यथार्थ अनुभूतियों से उपन्यासकार अथवा पात्रों का जीवन–दर्शन उभरकर सामने आता है। प्राचीन काल से लेकर आज तक साहित्य के द्वारा साहित्यकार अपने मन्तव्य, उद्देश्य, या विचार–धारा को व्यक्त करते आ रहा है। प्राचीन काल में धार्मोपदेश, मध्यकाल में चरित्र में सुधार और आजकल स्वयं भारमुक्त होता, दूसरों को आनन्द देना और युगजीवन से परिचित करना इन उद्देश्यों के अनुकूल विचाराधारा का सूत्र– पात होता रहा है, क्योंकि पहले भी उपन्यास केवल मनोरंजन का साधन नहीं था और आज तो बिलकुल ही नहीं है। जीवन –दर्शन के भीतर उपन्यास में मानव–जीवन के क्रिया–कलाप, चिन्तन विकास, मनोविज्ञान और अन्तः बहिर्दृष्टि का विवेचन होता है।

साहित्यकार का कार्य दार्शनिक या वैज्ञानिक से बहुत अलग है। जहा दार्शनिक और वैज्ञानिक हाथ टेकदेते है, वहीं से साहित्यकार की शुरूआत होती है। अर्थात भावना साहित्यकार के पास ही होती है, दार्शनिक और वैज्ञानिक के पास नहीं । आर्चाय चतुरसेन भी भावना को महत्व देते है और साहित्य में रंजकता के साथ–साथ कोई विशिष्ट विचार को मानते है। उनका संपूर्ण उपन्यास साहित्य अपने समय की युगीन विचारधाराओं की उपज है। उपन्यास में हर पात्र का एक जीवन दर्शन होता है। किसी भी कार्य को क्यों करते हैं अथवा किसी कार्य विशेष को करने से अपने को रोकते है, यह सब जीवन दर्शन पर आधारित है। उपन्यास में किसी पात्र के क्रिया–कलाप, उसका दृष्टिकोण, झुकाव, उसके विचार उसकी धारणाऐं एवं उसके नैतिक मानदण्ड का योगफल ही उसका अस्तित्व है और वही उसका जीवन दर्शन होता है। [5]

अतः विचारधारा या जीवन दर्शन उपन्यास में व्यक्ति के जीवन–चरित्र तथा व्यक्तित्व का नवनीत है। कुल मिलाकर उसका समस्त चिन्तन–पक्ष ही उस व्यक्ति का जीवन–दर्शन है। आचार्य

चतुरसेन शास्त्री भी एक युग पुरूष थे। किन्तु भारतीय परम्परा का निर्वाह करने में वे सनातनियों से तनिक भी पीछे नहीं थे। जीवन का गहन अध्ययन आचार्य ही ने किया है।

आचार्य चतुरसेन के प्रमुख उपन्यासों की क्रमानुसार तालिका :

क्र.संख्या	उपन्यास का नाम	प्रकाशित कालक्रम
1	वैशाली की नगरवधू	1949
2	रक्त की प्यास	1951
3	आलमगीर	1954
4	वंय रक्षामः	1955
5	सोमनाथ	1955
6	गोली	1956
7.	शतरंज के मोहरे	1958
8.	सुहाग के नुपुर	1960
9	सोना और खून	1960
10	सहयाद्रि की चट्टानें	1960
11	सत घूँघट वाला मुखड़ा	1968

उपन्यासो में मनोवैज्ञानिक जीवन – दर्शन : आचार्य चतुरसेन का मनोवैज्ञानिक जीवन दर्शन पक्ष बड़ा प्रबल था। उन्होनें अपने साहित्य में मनोवेज्ञानिक के सभी पक्षों पर किसी न किसी रूप में अवश्य ही विचार किया है। यहा हम उन विचारो को क्रमशः उद्धृत करेंगे, जिनसे आचार्य जी का यह पक्ष उद्घाटित हो सके।

1. **चेतन एवं अवचेतन की धारणा :**

आचार्य जी ने मन के चेतन एवं अवचेतन दोनों स्वरूपों को एवं उनकी क्रियाओ को व्यावहारिक जीवन में संजोया था। उनके द्वारा रचित एवं चित्रित पात्र मानव– सुलभ नैसर्गिक मानसिक वृत्तियों के मध्य जीवन व्यतीत करते है। उनके द्वारा रचित उपन्यास ''हृदय की परख'' की नायिका सरला चेतन रूप से प्रबुद्ध एवं आदर्शवादी युवती है वह सत्यव्रत को प्रेम एवं वासना का अन्तर बताकर विवेकपूर्ण ढंग से प्रकृति और परमात्मा–तत्व के प्रति मानवीय अनुराग का सर्वश्रेष्ठ सिद्व करती है। परन्तु उसका अवचेतन मन पुरूष संसर्ग के प्रति नैकट्य से उत्पन्न रतिकामना की ओर स्वभावतः उन्मुख रहता है। जब वह चित्रकार विद्यासागर के सम्पर्क में आती है तो उसका ऐसा परिष्कृत मस्तिष्क, ऐसा विस्तृत हृदय, ऐसा अटल निश्चय, ऐसे वेग से उस युवक की ओर बहा जा रहा है कि स्वयं सरला भी घबरा उठी है। जब वह युवक आता है तो सरला न तो उससे विशेष बातें ही करती है और उन उसकी ओर देखती है, पर उसके चले जाने पर इस मूर्खता के लिए पछताती है। [6] इससे स्पष्ट होता है कि उसका चेतन मन उसे मर्यादावादिनी बनाए रखना चाहता है, जबकि अवचेतन मन से सहज ही पुरूष के प्रति आकृष्ट करता है ।

इसी प्रकार आचार्यजी ने ''वैशाली की नगरवधू'' में अम्ब्रपाली के चेतन एवं अवचेतन मन का संघर्ष भी पाठक के सामने उभरा है। इस रूप की ज्वाला में मैं विश्व को भस्म करूंगी। इस अछूते रूप को सदा अछूता रखूँगी इस सुषमा को खान–मात्र को किसी को छूने भी न दूँगी, विश्व उसे भोग न सकेगा, वह इसकी पूजा ही करे। [7] जहाँ उसका चेतन मन यह कहता है वहीं उसका अवचेतन मन पुरूष के समक्ष सर्वस्व समर्पण के लिए मचलाता है।

''पत्थर युग के बुत'' की सहनायिका रेखा का सम्पूर्ण व्यक्तित्व चेतन एवं अवचेतन मन के संघर्ष की तुषार से अवष्ठित है। उसी के शब्दों में देखिए '' वे प्यार देते है, सुख देते हैं, पर उनके आते ही प्यार भय बन जाता है, सुख डंक मारने लगता है और तृप्ति प्यास को भड़का देती है।

''सोमनाथ'' उपन्यास में भी चेतन एवं अवचेतन का सुन्दर अंकन चतुरसेन जी ने शोभना के चरित्र में किया है । बाल–विधवा ब्राह्मणी शोभना चेतन से ब्राह्य रूप से सामाजिक मर्यादाओं से घिरी है, किन्तु अवचेतन के वशीभूत होकर वह मुसलमान बन जाने वाले अपने प्रेमी पर भी गुप्तचरी करके उसका साथ देती है, परन्तु जब उसका चेतन मन जागरूक होता है तो वह अपने प्रेमी की हत्या करके अपने देश प्रेम, राष्ट्र हित एवं भारतीय संस्कृति का परिचय देती है। इस प्रकार हम कह सकते है कि आचार्यजी ने अपने उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता की भी सूक्ष्म स्थिति को दर्शाने का प्रयास किया है।

राजनीतिक जीवन –दर्शन :

आचार्य चतुरसेन शास्त्रीजी ने अपने उपन्यासों में युद्धों का वर्णन बहुत ही रोचकता एवं कल्पकता से किया है। '' आलमगीर'' में वे लिखते है – '' दूसरे दिन सूर्योय के साथ ही साथ दोनों सेनाओं ने एक दूसरे को आमने सामने देखाा। तुरंत ही सुलेमान ने गोले दागने की आज्ञा दे दी । देखते–देखते वहाँ का वातावरण गर्जन–तर्जन और धुएँ से भर गया, परंतु अंधाधुधी की लड़ाई थी। कहाँ किसकी कितनी क्षति हो रही है, यह कुछ जान ही न पड़ता था। सुलेमान घोड़े पर सवार हो बड़ी मुस्तैदी से तोपखाने का मुलाहिजा करता तथा उन्हें उत्साहित भाव से इस अव्यवस्थित युद्ध को देख रहे थे।

1. युद्ध पूर्व का जीवन –दर्शन :

''सोमनाथ'' उपन्यास के अध्याय –केसरियाबाना' में लेखक ने महमूद गजनी के आक्रमण पूर्व घोघाबापा किस प्रकार युद्धपूर्व तैयारी करते है उसका वर्णन आचार्यचतुरसैन करते है, वृद्ध घोघाबापा युवा पुरूष की भांति व्यस्त कार्यक्रम में जुट गए। उन्होनें गढ़वी राघव के साथ घोड़े पर सवार होकर सारे गढ़ का निरीक्षण किया । मरम्मत के योग्य स्थलों की मरम्मत प्रारंभ कर दी । अनावश्यक द्वारेां की ईंट, पत्थरों से भरवा दिया। खाई की सफाई कराई, पुल उठवा दिया, गढी के द्वार बंद कर दिए, केवल मोरी खुली रक्खी। गढ़ी के लुहारों की धोंकली आग की चिंगारियों से रात दिन मनोरंजन खेल–खेलने लगी। ढेर के ढेर बर्छे और तलवारें तैयार होने लगे। राजपूत– अपनी–अपनी ढाल तलवार मांजकर साफ करने लगे। घोंघाबापा के आदेश से गढी के बाहर के सब गाँव उठकर गढी में आ गए। खड़ी फसलें जला डाली गई। कुए, तालाब, बावडी, पाट दिए गए। अब पाचास–पचास कोस तक अन्न, जल और घास का नाम निशान न रह गया। गढी में रोज जुझाऊ बाजे बनजे लगे। नित्य मुंदिर में कीर्तन होने लगा। चौहान राजकुल की बहुएँ व्रत उपहास और दान कर पुण्यार्जन करने लगी। वृद्ध घोंघाबापा नित्य सांय प्रातः गढी के बूर्ज पर खडे होकर दूर क्षितिज की आर गजनी के अमीर की सेना को व्यग्रभाव से देखा करते। उनके साथ बहुत से राजपूत जनसाधारण और बालक भी होते थे और एक दिन जिसकी प्रतीक्षा थी वह सत्य हुआ ।

दूर क्षितिज में महान अजगर की भाँति सरकती हुई अमीर गजनी की विकराल सेना आ रही थीं । उस सेना का आदि अंत न था। घोड़ों के खुरों से उड़ाई हुई गर्द ने आकाश को ढांप लिया था। गर्द के बादलों में बिजली की भांति सेना के शस्त्र चमल रहे थे। काले–पीले, उछलते दौड़ते घुड़सवार, विविध मेंघों के समान उमड़ती हुई इस मलेच्छ सेना को बढ़ती आती हुई देख घोंघाबापा की आँखों से आग की चिंगारी निकलने लगी । इस प्रकार बड़ी ही रोचकता से युद्ध पूर्व जीवन दर्शन को चित्रित किया गया है। ''हरण निमंत्रण'' में भीमदेव–पृथ्वीराज के युद्धपूर्व तैयारी का वर्णन शास्त्रीजी करते है। '' जिस प्रकार बरसारी नदियाँ उमड़–उमड़कर एकत्र आ मिलती है, इसी प्रकार भिन्न–भिन्न राजाओं की सेना भी पाटन में एकत्र होने लगी। हाथियों, घोड़ों, सैनिकों और शस्त्रों से पाटन भर गया।

सभी पर रंग–रंग चढ़ा था। किसी को अपने हार की चिंता न थी। अब गुर्जर सेना चली। काजल के समान काले–काले भील धनुष्य–बाण लेकर आगे चले। उनके पीछे हाथियों की कतार जिन की चिंघाड से पर्वत और जंगल गूँज रहे थे। उनके गले की घंटियाँ और कमर के घंटे निरंतर बजते जा रहे थें । वे मार्ग के पेड़ों को तोड़ते, उखाड़ते दंतपक्तियों की बहार दिखाते चल रहे थे। उनके पीछे ढाल–तलवार लिए पैदल योद्धा थे। शास्त्री जी आके लिखते है, '' पृथ्वीराज ने बडी वीर दर्प से रणयात्रा की । रणवाद्यों का तुमूल नाद बादल की गर्जना के समान हो रहा था। कहीं जांगड़ा और कहीं कलिंगड़ा अलापते, कहीं नकीब पदवी अलापते, कहीं बंदी विरद बखानते और कहीं कवि कवित्त सुनाते चले ।

युद्धोपरांत जीवन–दर्शन :

''वैशाली की नगरवधू'' में आचार्य शास्त्रीजी ने लिखा है कि '' मध्य रात्रि थी। एक भी तारा आकाश–मंडल में नही दीख रहा था। काले बादलों ने उस अंधेरी रात को और भी अंधेरी बना दिया। वातावरण में एक उदासी, बेचैनी और उमस भरी हुई थी। दूर तक फैले हुए युद्ध क्षेत्र में सहस्त्रों चिताएँ जल रही थी। उनमें युद्ध में निहित सैनिकों के शव जल रहे थे। सैनिक शव ढो–ढोकर एक महाचिता में डाल रहे थे। बड़े–बड़े वीर योद्धा जो अपनी हुंकृति से से भूतल को कंपित करते थे, छिन्नमस्तक छिन्नबाहु भूमि पर धूलि–धूसरित पड़े थे। अनेक छत्रधारियों के स्वर्ण मुकूट इधर–उधर लुढक रहे थे। संपूर्ण दृश्य ऐसा था, जिसे देखकर बड़े–बड़े वीरों का धैर्य च्युत हो सकता था।

''वैशाली की नगरवधू' में शास्त्रीजी ने आम्रपाली के जीवन की विडंबना को प्रस्तुत किया है। उसमें सबसे हृद्य प्रसंग है उसके नगरवधू बनने की घोषणा का। भरी परिषद भवन में सभी तरफ से आवाज उठती है, देवी आम्रपाली की जय, वैशाली की नगरवधू की जय, वैशाली जनपद कल्याणी की जय। आम्रपाली के होठ हिले, जेसे गुलाब की पंखडिों को प्रातः समीर ने आंदोलित किया हों। वीणा की झंकार के समान उसकी वाणी ने संयागार में सुधावर्णन किया–भंते, आपके आदेश पर मैंने विचार कर लिया है। मैं वज्जी संध के धिक्कृत कानून का स्वीकार करती हूँ। यदि सन्निपात को मेरी शर्ते स्वीकार हो, वे शर्ते भंते, गणपति आपको बता देंगे। परिषद भवन में मंद जनरव सुनाई दिया। एक अधेड़ सदस्य ने अपनी मूँछों को दाँतो से दाबकर कहा क्या कहा धिक्कृत कानून, देवी आग्रपाली, तुम यह वाक्य वापस लो, यह परिषद का घोर अपमान है। चारों ओर से आवाजें आने लगी। आम्रपाली ने सहज शांत स्वर में कहा, मै सहस्त्र बार इस शब्द को दुहराती हूँ । [8]

वज्जी संघ का यह धिक्कृत कानून वैशाली जनपद के यशस्वी गणतंत्र का कलंक है। भंते, मेरा अपराध केवल यही है कि, विधाता ने मुझे यह अथाह रूप दिया। इसी अपराध के लिए आज मैं अपने जीवन के गौरव को लांछना और अपमान के पंक में डुबो देने को विवश की जा रही हूँ । इसीसे मुझे स्त्रीत्व के उन सब अधिकारों से वंचित किया जा रहा है जिस पर प्रत्येक कुलवधू का अधिकार हैं। अब मैं अपनी रूचि और पसंद से किसी व्यक्ति को प्रेम नहीं कर सकती, उसे अपनी देह और अपना हृदय अर्पण नहीं कर सकती। अपना स्नेह से भरा हृदय और रूप से लथपथ यह अधम देह देकर अब मैं वैशाली की हाट में ऊँचे–नीचे दाम में इसे बेचने बैठूंगी। आप जिस कानून के बल पर मुझे ऐसा करने को विवश कर रहे हैं, वह एक बार नहीं लाख बार धिक्कृत होने येाग्य है, जिसे आज ये स्त्रैण तरूण सामंतपुत्र अपने खड्ग की तीखी धार और भालों की नोक के बल पर अक्षुण्ण और सुरक्षित रखना चाहते हैं और ये सेट्ठि पुत्र अपनी रत्नराशि जिस पर लुटाने को दृढप्रतिज्ञ है।

आम्रपाली यह कहकर रूकी। उसका अंग कांप रहा था और वाणी तीखी हो रही थी। परिषद भवन में सन्नाटा था। उसने फिर कहा 'भंते' मैं अपना अभिप्राय निवेदन कर चुकी। यदि सन्निपात को मेरी शर्ते स्वीकार हो तो मैं अपना सतीत्व, स्त्रीत्व, मर्यादा, यौवन रूप और देह आपके इस धिक्कृत

कानून को अर्पण करती हूँ । यदि अपको मेरी शर्ते स्वीकार न हो तो मैं नीलपद्म प्रासाद में आपके वधिकों की प्रतीक्षा करूंगी।

संपूर्ण उपन्यास में यह प्रसंग अत्यंत भावुक बन पड़ा है। इसमें एक स्त्री वेदना, उसकी असहायता उसके सौंदर्य का, उसकी निजी भावनाओं का अनादर व्यक्त हुआ हैं साथ ही आम्रपाली की अस्मिता के दर्शन भी हुए है। वह इसका संचय विरोध करती है। इस प्रसंग से नारी समता की भावना को भी बढ़ावा मिला है।

''सोमनाथ'' में आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने लिखा है कि ''दुर्ग सुना था, वहाँ न एक प्राणी था, न एक दाना अन्न, न एक बूँद पानी। दुर्ग के तल भाग में बस्ती प्रथम ही जलाकर राख कर डाली गई थी। सब लोग कट पिट चुके थे, जो लोग बच सके थे वे प्राण बचाकर भाग गए थे। वहां लाशें सड़ रहीं थी, गीध मंडरा रहे थे। अमीर की सारी सेना त्रस्त, थकित, भूखी–प्यासी और अशांत थी। वहां पर सिपाहियों के लिए अन्न और जल नहीं था और घोड़ो के लिए चारा नहीं था।

''आलमगीर'' में चित्रित मुगलों के तत्कालीन राजनीति के संदर्भ में शास्त्रीजी लिखते है, मुगल साम्राज्य चलाने में अप्रत्यक्ष रूप में हरम का हाथ था। हरम में बहुत से षड्यंत्र चलते थे। हरम में हर एक सरदार का कोई न कोई जासूस रहता ही था। शाहजहाँ के चारों पुत्रों के जासूस दरबार में और हरम में घुसे बैठे थे। साम्राज्य में सब जगह पर अगणित षड्यंत्र चलते थे और बादशाह भोगविलास और कामुकता से तल्लीन रहता था। उसी कारण उसे अपने पुत्रों के षड्यंत्रों का पता लगता नहीं था। अंतः नजीजा यह होता कि, मुगल साम्राज्य का विनाश और पतन की ओर बढ़ता है।[9] शास्त्रीजी ने इस प्रकार गृहयुद्धों से भरे तत्कालीन राजनीतिक जीवन–दर्शन को कल्पक ढंग से प्रस्तुत किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डब्लयू. एच. हडसन : एन इन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ लिटरेचर (1965) पृ. 165*
2. *वही. पृष्ठ 168*
3. *हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन : महावीर मल लोदा, 1972 पृष्ठ 19*
4. *स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में जीवन–दर्शन : डॉ सुमित्रा त्यागी पृ. 23*
5. *हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र पृ. 675*
6. *चतुरसेन शास्त्री, हृदय की परख, पृष्ठ 60*
7. *चतुरसेन शास्त्री, वैशाली की नगरवधू, पृष्ठ 102*
8. *चतुरसेन शास्त्री, वैशाली की नगरवधू, पृष्ठ 460*
9. *वही पृष्ठ 71, 72*
10. *चतुरसेन शास्त्री, नील मणि, पृष्ठ 18*
11. *चतुरसेन शास्त्री, नारी, पृष्ठ 113*
12. *वही, पृष्ठ संख्या 128*
13. *चतुरसेन शास्त्री, शुभदा, पृष्ठ 17*
14. *चतुरसेन शास्त्री, बहते आँसू, पृष्ठ 52*

15. चतुरसेन शास्त्री, वैशाली की नगर वधू, पृष्ठ 140
16. चतुरसेन शास्त्री, वयं रक्षामः, पृष्ठ 146
17. चतुरसेन शास्त्री, धर्मपुत्र, पृष्ठ 63
18. चतुरसेन शास्त्री, खून और खून, पृष्ठ 36
19. चतुरसेन शास्त्री, शुभदा, पृष्ठ 28
20. चतुरसेन शास्त्री, सोमनाथ, पृष्ठ 34
21. चतुरसेन शास्त्री, वैशाली की नगरवधू, पृष्ठ 135
22. वही, पृ. 140
23. चतुरसेन शास्त्री, गोली, पृष्ठ 139
24. चतुरसेन शास्त्री, नारी, पृष्ठ 72
25. चतुरसेन शास्त्री, नीलमणि, पृष्ठ 43